

Chapter इक्यासी

भगवान् द्वारा सुदामा ब्राह्मण को वरदान

इस अध्याय में बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह अपने मित्र सुदामा द्वारा लाये गये तंदुल का एक कौर खाकर, उसे स्वर्ग के राजा से भी बढ़कर सम्पदा प्रदान की।

भगवान् कृष्ण ने अपने मित्र सुदामा से प्यार-भरी बातें करते हुए कहा, “हे ब्राह्मण! क्या तुम घर से मेरे लिए कोई उपहार लाये हो? मैं अपने प्रिय भक्त की तुच्छ से तुच्छ भेंट को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानता हूँ।” लेकिन बेचारा ब्राह्मण तन्दुल की तुच्छ भेंट देते हुए लज्जित था। किन्तु भगवान् कृष्ण समस्त हृदयों में वास करने वाले परमात्मा होने से जानते थे कि सुदामा उनसे भेंट करने क्यों आया है। इसलिए उन्होंने सुदामा द्वारा छिपाई हुई तन्दुल की पोटली छीन ली और उसमें से वे मुट्ठी-भर प्रसन्नतापूर्वक खाने लगे। वे दूसरा कौर खाने वाले ही थे कि रुक्मिणीदेवी ने उन्हें रोक दिया।

यह अनुभव करते हुए कि मैं ईश्वर के पास वापस आ गया हूँ, सुदामा ने कृष्ण के महल में वह रात सुखपूर्वक बिताई और सुबह होते ही वह घर के लिए चल पड़ा। जब वह राजमार्ग से जा रहा था, तो वह सोच रहा था कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि श्रीकृष्ण ने मेरा इतना आदर किया। इसी ध्यान में मग्न सुदामा उस स्थान पर पहुँचा जहाँ पहले उसका मकान था। वह बड़े ही आश्चर्य में पड़ गया। अपनी टूटी कुटिया के स्थान पर उसने वैभवशाली महलों की शृंखला देखी। जब वह आश्चर्यचकित खड़ा था, तो सुन्दर नर-नारियों की एक टोली गायन-वादन करती उसका स्वागत करने आई। ब्राह्मण की पत्नी तो दिव्य आभूषणों से सजी हुई महल के बाहर आई और उसने बड़े प्रेम तथा सम्मान से उसका स्वागत किया। सुदामा अपनी पत्नी के साथ अपने घर में यह सोचते हुए घुसा कि यह असाधारण परिवर्तन भगवान् की कृपा के फलस्वरूप ही हुआ होगा।

उसी के बाद से सुदामा धनी का-सा जीवन बिताने लगा, किन्तु साथ ही उसमें विरक्ति-भाव बना रहा और वह भगवान् श्रीकृष्ण का निरन्तर यशोगान करता रहा। उसने अल्प काल में सारे दैहिक आसक्ति के बन्धनों को तोड़ कर भगवद्धाम प्राप्त किया।

श्रीशुक उवाच

स इत्थं द्विजमुख्येन सह सङ्गथयन्हरिः ।

सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् ।

प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—वह; इत्थम्—इस प्रकार; द्विज—ब्राह्मणों में; मुख्येन—श्रेष्ठ के; सह—साथ; सङ्गथयन्—बात करते हुए; हरिः—भगवान् हरि ने; सर्व—समस्त; भूत—जीवों के; मनः—मनों को; अभिज्ञः—जानने वाले; स्मयमानः—हँसते हुए; उवाच—कहा; तम्—उस; ब्रह्मण्यः—ब्राह्मण-भक्त; ब्राह्मणम्—ब्राह्मण को; कृष्णः—कृष्ण ने; भगवान्—भगवान्; प्रहसन्—हँसते हुए; प्रियम्—अपने प्रिय मित्र पर; प्रेम्णा—प्रेमपूर्वक; निरीक्षणेन—तिरछी नजर से; एव—निस्सन्देह; प्रेक्षन्—देखते हुए; खलु—निस्सन्देह; सताम्—साधु-भक्तों के; गतिः—लक्ष्य ।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : भगवान् हरि अर्थात् कृष्ण सभी जीवों के हृदयों से भलीभाँति परिचित हैं और वे ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से अनुरक्त रहते हैं। समस्त सन्त-पुरुषों के लक्ष्य भगवान् सर्वश्रेष्ठ द्विज से इस तरह बातें करते हुए हँसने लगे और अपने प्रिय मित्र ब्राह्मण सुदामा की ओर स्नेहपूर्वक देखते हुए तथा मुसकाते हुए निम्नलिखित शब्द कहे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार सर्वभूतमनोऽभिज्ञ शब्द यह सूचित करते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्ण हर एक के मन की बात जानते हैं, अतः वे तुरन्त बतला सकते थे कि उनका मित्र सुदामा अपने साथ उनके लिए कुछ तंदुल लाया है, जिन्हें भेंट करते हुए वह सकुचा रहा है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की आगे व्याख्या करते हुए यह लिखा है कि उस क्षण भगवान् कृष्ण यह सोचकर मुसकाये कि “रुको, मैं तुम्हें बतलाये दे रहा हूँ कि तुम मेरे लिए क्या लाये हो।” उनकी मुसकान तब अट्टहास में बदल गई जब उन्होंने सोचा, “तुम आखिर कितनी देर तक अपने वस्त्र में छिपे इस बहुमूल्य उपहार को रखे रहोगे?”

कृष्ण ने अपने मित्र के वस्त्र के भीतर छिपी पोटली पर दृष्टि डाली और अपनी प्रेम-भरी चितवन से सुदामा को बतला दिया, “तुम्हारी दुर्बल चमड़ी के नीचे से झलकती नसें तथा तुम्हारे फटे-पुराने वस्त्र यहाँ पर उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य में डालने वाले हैं, किन्तु दरिद्रता के ये लक्षण केवल कल प्रातःकाल तक ही टिक पायेंगे।”

यद्यपि कृष्ण परम स्वतंत्र भगवान् हैं, किन्तु वे अपने प्रियजनों से, अपने स्नेहिल दासों से आदान-प्रदान करने में सदैव प्रसन्न रहते हैं। वे ब्राह्मण वर्ग के कृपालु संरक्षक होने के नाते ब्राह्मणों का जो

अपनी निरपेक्ष भक्ति के कारण अतिरिक्त योग्यता रखते हैं, पक्ष लेते हुए आनन्दित होते हैं।

श्रीभगवानुवाच

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् ।

अण्वप्युपाहतं भक्तैः प्रेम्णा भुर्येव मे भवेत् ।

भूर्यप्यभक्तोपहतं न मे तोषाय कल्पते ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; किम्—क्या; उपायनम्—भेंट; आनीतम्—लाई हुई; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; मे—मेरे लिए; भवता—आपके द्वारा; गृहात्—अपने घर से; अणु—अति तुच्छ; अपि—भी; उपाहतम्—दी गई वस्तु; भक्तैः—भक्तों द्वारा; प्रेम्णा—शुद्ध प्रेम से; भूरि—बहुत; एव—निस्सन्देह; मे—मेरे लिए; भवेत्—हो जाती है; भूरि—प्रचुर; अपि—भी; अभक्त—अभक्तों द्वारा; उपहतम्—भेंट किया गया; न—नहीं; मे—मेरी; तोषाय—तुष्टि के लिए; कल्पते—कुशल (दक्ष) है।

भगवान् ने कहा : हे ब्राह्मण, तुम अपने घर से मेरे लिए कौन-सा उपहार लाये हो? शुद्ध प्रेमवश अपने भक्तों द्वारा प्रस्तुत की गई छोटी से छोटी भेंट को भी मैं बड़ी मानता हूँ, किन्तु अभक्तों द्वारा चढ़ाई गई बड़ी से बड़ी भेंट भी मुझे तुष्ट नहीं कर पाती।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पत्रम्—पत्ती; पुष्पम्—फूल; फलम्—फल; तोयम्—जल; यः—जो कोई भी; मे—मुझको; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; प्रयच्छति—प्रदान करता है; तत्—वह; अहम्—मैं; भक्ति-उपहतम्—भक्ति की भेंट; अश्नामि—स्वीकार करता हूँ; प्रयत-आत्मनः—शुद्ध चेतना वाले से।

यदि कोई मुझे प्रेम तथा भक्ति के साथ एक पत्ती, फूल, फल या जल अर्पित करता है, तो मैं उसे स्वीकार करता हूँ।

तात्पर्य : ये सुप्रसिद्ध शब्द भगवान् द्वारा भगवद्गीता (९.२६)में भी कहे गये हैं। उपर्युक्त भावार्थ तथा शब्दार्थ श्रील प्रभुपाद के भगवद्गीता यथारूप से लिये गये हैं।

सुदामा के द्वारका गमन की वर्णित घटना के प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती भगवान् कृष्ण के वाक्यों की व्याख्या करते हुए कहते हैं—यह श्लोक सुदामा की उस चिन्ता का उत्तर है कि उसके द्वारा लाई गई अनुपयुक्त भेंट की सोच अविवेकपूर्ण थी। भक्त्या प्रयच्छति तथा भक्त्युपहतम् शब्द भले ही अनावश्यक लगें, क्योंकि दोनों का अर्थ “भक्तिपूर्वक भेंट करना” है किन्तु भक्त्या शब्द यह सूचित करता है कि भगवान् प्रेमपूर्वक भेंट करने वाले की भक्ति का किस तरह से आदान-प्रदान करते हैं।

दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण यह घोषित करते हैं कि शुद्ध प्रेम-विनिमय भेंट के बाह्य गुण पर निर्भर नहीं करता। कृष्ण कहते हैं, “कोई वस्तु भले ही अपने में प्रभावशाली अथवा सुखद हो या न हो किन्तु जब भक्त उस वस्तु को भक्तिपूर्वक मुझे इस आशा के साथ अर्पित करता है कि मैं उसका आस्वादन करूँगा तो इससे मुझे अतिशय आनन्द होता है। इसमें मैं कोई भेदभाव नहीं बरतता।” *अश्नामि* क्रिया का भाव यह है कि भगवान् कृष्ण फूल तक को खा लेते हैं, जो सूँघने की वस्तु है, क्योंकि अपने भक्त के लिए अनुभव किये जाने वाले भावमय प्रेम में वे विभोर हो जाते हैं।

हो सकता है कि भगवान् से कोई यह प्रश्न करे, “तो क्या आप भक्त द्वारा किसी अन्य अर्चाविग्रह को अर्पित वस्तु नकार देंगे?” भगवान् उत्तर देते हैं, “हाँ, मैं उसे खाने से इनकार कर दूँगा।” इसे भगवान् *प्रयतात्मनः* शब्द द्वारा कहते हैं जिसका अर्थ है “मेरी भक्ति के द्वारा ही मनुष्य शुद्ध हृदय वाला बन सकता है।”

इत्युक्तोऽपि द्वियस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः ।

पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उक्तः—कहा गया; अपि—यद्यपि; द्विजः—ब्राह्मण; तस्मै—उसको; व्रीडितः—व्यग्र; पतये—पति को; श्रियः—लक्ष्मी के; पृथुक—तंदुल की; प्रसृतिम्—मुट्टी को; राजन्—हे राजा (परीक्षित); न प्रायच्छत्—प्रदान नहीं किया; अवाक्—नमित; मुखः—सिर किये।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : हे राजन्, इस प्रकार सम्बोधित किये जाने पर भी वह ब्राह्मण लक्ष्मी के पति को मुट्टी-भर तंदुल देने में अत्यधिक हिचकिचा रहा था। बस, वह लज्जा के मारे अपना सिर नीचे किये रहा।

तात्पर्य : आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार कृष्ण को “लक्ष्मीपति” कहने का आशय यह है कि सुदामा ने अपने आप से पूछा, “भला श्रीपति इस कड़े बासी चावल को कैसे खा सकेंगे?” सिर नीचा करके ब्राह्मण ने अपने इस ध्यान को प्रकट किया है कि “हे प्रभु! आप मुझे इस तरह लज्जित न करें। यदि आप बारम्बार भी अनुरोध करें तो भी मैं आपको इसे नहीं दूँगा। मैंने यह संकल्प कर लिया है।” लेकिन भगवान् ने अपने विचार से उसका प्रत्युत्तर दिया, “चूँकि तुम मेरे भक्त हो अतएव आते समय तुमने जो भी मन में इरादा स्थिर किया हो, उसे विमुख नहीं होना चाहिए।”

सर्वभूतात्महृत्साक्षात्तस्यागमनकारणम् ।

विज्झयाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माभजत्पुरा ॥ ६ ॥

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया ।

प्राप्तो मामस्य दास्यामि सम्पदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सर्व—समस्त; भूत—जीवों के; आत्म—हृदयों के; हृत्—साक्षी; साक्षात्—प्रत्यक्ष; तस्य—उसके (सुदामा के); आगमन—आने का; कारणम्—कारण; विज्ञाय—भलीभाँति समझ कर; अचिन्तयत्—सोचा; न—नहीं; अयम्—यह; श्री—ऐश्वर्य का; कामः—इच्छुक; मा—मुझको; अभजत्—पूजा रहा; पुरा—भूतकाल में; पत्न्याः—अपनी पत्नी के; पति—अपने पति के प्रति; व्रतायाः—अनुरक्त; तु—लेकिन; सखा—मित्र; प्रिय—संतोष; चिकीर्षया—प्राप्त करने की इच्छा से; प्राप्तः—आया हुआ; माम्—मुझको; अस्य—इसको; दास्यामि—दूँगा; सम्पदः—सम्पदा; अमर्त्य—देवताओं के द्वारा; दुर्लभाः—अलभ्य ।

समस्त जीवों के हृदयों में प्रत्यक्ष साक्षी स्वरूप होने के कारण भगवान् कृष्ण भलीभाँति समझ गये कि सुदामा उनसे मिलने क्यों आया है। अतः उन्होंने सोचा, “इसके पूर्व मेरे मित्र ने कभी भी भौतिक ऐश्वर्य की इच्छा से मेरी पूजा नहीं की है, किन्तु अब वही अपनी सती तथा पति-परायणा पत्नी को सन्तुष्ट करने के लिए मेरे पास आया है। मैं उसे वह सम्पदा प्रदान करूँगा, जो अमर देवतागण भी कभी प्राप्त नहीं कर सकते।”

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती टीका करते हैं कि भगवान् को क्षणिक आश्चर्य हुआ, “मेरी सर्वज्ञता के बावजूद यह किस तरह सम्भव हो सका कि मेरा यह भक्त इतनी दरिद्रता को प्राप्त हुआ?” फिर तुरन्त स्थिति समझते हुए उन्होंने अपने आपसे इस श्लोक में दिये गये शब्द कहे।

किन्तु कोई यह कह सकता है कि सुदामा को इतना दरिद्र नहीं होना चाहिए था क्योंकि समुचित भोग तो ईश-सेवा का उपफल होता है और ऐसा किसी परोक्ष अभिप्राय से रहित भक्त के लिए भी सत्य है। इसकी पुष्टि भगवद्गीता (९.२२) में हुई है—

अनन्याश्चिन्त्यन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

“जो लोग मेरे दिव्य स्वरूप का ध्यान करते हुए अनन्य भक्ति के साथ मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं वह देता हूँ जो उनके पास नहीं होता और उनके पास जो होता है उसको सुरक्षित रखता हूँ।”

इस बात के उत्तर के रूप में दो प्रकार के विरक्त भक्तों में अन्तर करना आवश्यक है—एक प्रकार का भक्त इन्द्रिय-तृप्ति का शत्रु है और दूसरा उसके प्रति उदासीन रहता है। भगवान् कभी भी उस भक्त पर इन्द्रिय-तृप्ति नहीं थोपते जो सांसारिक भोगों से अन्यमनस्क होता है। जड़ भरत जैसे महान् विरक्तों

में ऐसा देखा जाता है। दूसरी ओर, भगवान् भक्त को अपार सम्पत्ति तथा शक्ति प्रदान कर सकते हैं, जो भौतिक वस्तुओं के द्वारा न तो आकृष्ट होते हैं न विकर्षित होते हैं, यथा प्रह्लाद महाराज। सुदामा अपने जीवन में अब तक इन्द्रिय-तृप्ति के प्रति पूर्णतया अन्यमनस्क था, किन्तु अब वह अपनी पति-परायणा पत्नी के प्रति दयाभाव से—और इसलिए भी कि उसमें कृष्ण का दर्शन करने की लालसा थी—वह भगवान् के पास याचना करने गया।

इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः ।
स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह; विचिन्त्य—सोच कर; वसनात्—कपड़े से; चीर—कपड़े के टुकड़े में; बद्धान्—बँधा हुआ; द्वि-जन्मनः—ब्राह्मण के; स्वयम्—खुद; जहार—छीन लिया; किम्—क्या; इदम्—यह; इति—ऐसा कहते हुए; पृथुक-तण्डुलान्—तन्दुल के दानों को।

इस प्रकार सोचते हुए भगवान् ने ब्राह्मण के वस्त्र में से कपड़े के पुराने टुकड़े में बँधे तन्दुल के दानों को छीन लिया और कह उठे, “यह क्या है?”

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे ।
तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ननु—क्या; एतत्—यह; उपनीतम्—लाया गया; मे—मेरे लिए; परम—परम; प्रीणनम्—संतोष प्रदान करते हुए; सखे—हे मित्र; तर्पयन्ति—कृपापात्र बनते हैं; अङ्ग—हे प्रिय; माम्—मुझको; विश्वम्—सारे ब्रह्माण्ड (स्वरूप में); एते—ये; पृथुक-तण्डुलाः—तन्दुल के दाने।

“हे मित्र, क्या इसे मेरे लिए लाये हो? इससे मुझे बहुत खुशी हो रही है। निस्सन्देह तन्दुल के ये थोड़े-से दाने न केवल मुझे, अपितु सारे ब्रह्माण्ड को तुष्ट करने वाले हैं।”

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं: “इस कथन से यह समझा जाता है कि प्रत्येक वस्तु के मूल स्रोत भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण सृष्टि के कारण हैं। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में पानी डालने से सम्पूर्ण वृक्ष के प्रत्येक भाग को पानी मिलता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण को अर्पण की गई वस्तु को, अथवा श्रीकृष्ण के लिए किए गये किसी भी कार्य को सभी के लिए सर्वोच्च कल्याणकारी कार्य समझना चाहिए, क्योंकि ऐसे अर्पण के लाभ को सम्पूर्ण सृष्टि में वितरित किया जाता है। श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम सभी जीवात्माओं में वितरित हो जाता है।”

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे ।
तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इति—ऐसा कहकर; मुष्टिम्—मुट्टी-भर; सकृत्—एक बार; जग्ध्वा—खाकर; द्वितीयम्—दूसरी; जग्धुम्—खाने के लिए; आददे—लिया; तावत्—तब तो; श्रीः—लक्ष्मी (रुक्मिणीदेवी) ने; जगृहे—पकड़ लिया; हस्तम्—हाथ; तत्—उस; परा—अनुरक्त; परमे-स्थिनः—भगवान्।

यह कहकर भगवान् ने एक मुट्टी खाई और दूसरी मुट्टी खाने ही वाले थे कि पति-परायणा देवी रुक्मिणी ने उनका हाथ पकड़ लिया।

तात्पर्य : महारानी रुक्मिणी ने कृष्ण का हाथ तन्दुल खाने से इसलिए पकड़ लिया जिससे वे और अधिक न खायें। श्रीपाद श्रीधर स्वामी के अनुसार इस संकेत द्वारा वे भगवान् को बता देना चाहती थीं कि “आपकी इतनी-सी कृपा से किसी को अथाह धन मिल सकता है, जो मेरी चितवन का खिलवाड़ मात्र है। लेकिन आप मुझे इसके लिए बाध्य न करें कि मुझे इस ब्राह्मण को आत्मसमर्पण करना पड़े, जो कि आपके द्वारा एक और मुट्टी खाने पर हो जायेगा।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की व्याख्या है कि रुक्मिणी द्वारा भगवान् कृष्ण का हाथ पकड़ने के पीछे भाव यह है कि, “यदि आप अपने मित्र द्वारा घर से लाये गये इस सारे तन्दुल को खा जायेंगे तो मेरी सहेलियों, सौतों, नौकरों तथा मेरे लिए क्या बचेगा? तब तो हममें से किसी को एक-एक दाना भी नहीं मिल पायेगा।” और उन्होंने संकेत द्वारा अपनी नौकरानियों से कहा, “इन कड़े चावलों से मेरे स्वामी का मुलायम पेट बिगड़ जायेगा।”

श्रील प्रभुपाद की टीका है कि “जब भगवान् श्रीकृष्ण को प्रेम एवं भक्ति के साथ अन्न अर्पित किया जाता है तथा वे प्रसन्न होकर भक्त की इस भेंट को स्वीकार कर लेते हैं, तो रुक्मिणी देवी जोकि लक्ष्मी हैं उस भक्त के प्रति इतनी कृतज्ञ हो उठती हैं कि उन्हें उस भक्त के निवासस्थान पर जाकर उसे विश्व के सर्वाधिक वैभवशाली घर में परिवर्तित करना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति श्री नारायण को अच्छी तरह से खिलाता है, तो लक्ष्मीजी स्वयं ही उसके घर की अतिथि बनती हैं, जिसका अर्थ है कि उसका घर वैभव से युक्त हो जाता है।”

एतावतालं विश्वात्मन्सर्वसम्पत्समृद्धये ।

अस्मिन्लोकेऽथ वामुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

एतावता—इतना; अलम्—पर्याप्त; विश्व—ब्रह्माण्ड के; आत्मन्—हे आत्मा; सर्व—समस्त; सम्पत्—सम्पदा का; समृद्धये—समृद्धि के लिए; अस्मिन्—इस; लोके—संसार में; अथ वा—या फिर; अमुष्मिन्—अगले में; पुंसः—मनुष्य के लिए; त्वत्—तुम्हारे; तोष—संतोष; कारणम्—कारणस्वरूप।

[महारानी रुक्मिणी ने कहा] : हे ब्रह्माण्ड के आत्मा, इस जगत में तथा अगले जगत में सभी प्रकार की प्रभूत सम्पदा दिलाने के लिए यह पर्याप्त है। आखिर, किसी की समृद्धि आपकी तुष्टि पर ही तो निर्भर है।

ब्राह्मणस्तां तु रजनीमुषित्वाच्युतमन्दिरे ।

भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणः—ब्राह्मण; ताम्—उस; तु—तथा; रजनीम्—रात; उषित्वा—रह कर; अच्युत—भगवान् कृष्ण के; मन्दिरे—महल में; भुक्त्वा—खाकर; पीत्वा—पीकर; सुखम्—सुखपूर्वक; मेने—सोचा; आत्मानम्—अपने से; स्वः—आध्यात्मिक जगत, वैकुण्ठ-लोक; गतम्—प्राप्त करके; यथा—मानो।

[शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा] : उस ब्राह्मण ने जी-भरकर खाने-पीने के बाद वह रात्रि भगवान् अच्युत के महल में बिताई। उसे ऐसा अनुभव हुआ, मानो वह वैकुण्ठ-लोक में आ गया हो।

श्रोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः ।

जगाम स्वालयं तात पथ्यनव्रज्य नन्दितः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

श्वः—भूते—अगले दिन; विश्व—ब्रह्माण्ड के; भावेन—पालनकर्ता द्वारा; स्व—अपने भीतर; सुखेन—सुख का अनुभव करने वाले; अभिवन्दितः—आदरित; जगाम—चला गया; स्व—अपने; आलयम्—घर; तात—हे प्रिय (राजा परीक्षित); पथि—रास्ते में; अनुव्रज्य—चलते हुए; नन्दितः—हर्षित।

अगले दिन ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता आत्माराम भगवान् कृष्ण द्वारा सम्मानित होकर सुदामा घर के लिए चल पड़ा। हे राजन्, वह ब्राह्मण मार्ग पर चलते हुए अत्यधिक हर्षित था।

तात्पर्य : हमें यहाँ स्मरण दिलाया जा रहा है कि भगवान् कृष्ण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को इच्छित वस्तुएँ प्रदान करते हैं। इसलिए यह समझना होगा कि वे सुदामा के लिए इन्द्र से भी बढ़कर ऐश्वर्य देने जा रहे थे। स्वसुख अर्थात् अपने आनंद में पूर्ण होने के कारण उनमें उपहार (वर) देने की असीम क्षमता है।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर के अनुसार अभिवन्दितः शब्द सूचित करता है कि श्रीकृष्ण

सुदामा के साथ मार्ग पर कुछ दूरी तक गये और अन्त में उस ब्राह्मण को शीश झुकाकर तथा आदरपूर्ण शब्द कहकर उससे विदा ली।

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् ।
स्वगृहान्ब्रीडितोऽगच्छन्महदर्शननिर्वृतः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; च—तथा; अलब्ध्वा—न पाकर; धनम्—धन; कृष्णात्—कृष्ण से; न—नहीं; तु—फिर भी; याचितवान्—माँगा; स्वयम्—अपने से; स्व—अपने; गृहान्—घर को; ब्रीडितः—खिन्न; अगच्छत्—चला गया; महत्—भगवान् के; दर्शन—दर्शन से; निर्वृतः—हर्षित होकर।

यद्यपि सुदामा को बाह्य रूप से भगवान् कृष्ण से कोई धन प्राप्त नहीं हुआ था, फिर भी वह अपनी ओर से कुछ भी माँगने में अत्यधिक सकुचा रहा था। वह यह अनुभव करते हुए पूर्ण सन्तुष्ट होकर लौटा कि उसने भगवान् के दर्शन पा लिये हैं।

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया ।
यदरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

अहो—आह; ब्रह्मण्य—ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धावान्; देवस्य—भगवान् का; दृष्ट—देखा हुआ; ब्रह्मण्यता—ब्राह्मण भक्ति; मया—मेरे द्वारा; यत्—जो भी; दरिद्र-तमः—सबसे निर्धन व्यक्ति; लक्ष्मीम्—लक्ष्मी को; आश्लिष्टः—आलिंगन किया; बिभ्रता—धारण करने वाले के द्वारा; असि—अपने वक्षस्थल पर।

[सुदामा ने सोचा] : भगवान् कृष्ण ब्राह्मण-भक्त के रूप में विख्यात हैं और अब मैंने स्वयं इस भक्ति को देख लिया है। निस्सन्देह लक्ष्मीजी को अपने वक्षस्थल पर धारण करने वाले उन्होंने सबसे दरिद्र भिखारी का आलिंगन किया है।

क्वहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः ।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

क्व—कौन; अहम्—मैं हूँ; दरिद्रः—निर्धन; पापीयान्—पापी; क्व—कौन; कृष्णः—भगवान् कृष्ण हैं; श्री-निकेतनः—समस्त ऐश्वर्य के दिव्य स्वरूप; ब्रह्म-बन्धुः—ब्राह्मण का मित्र, ब्राह्मण न कहलाने योग्य; इति—इस प्रकार; स्म—निश्चय ही; अहम्—मैं; बाहुभ्याम्—भुजाओं से; परिरम्भितः—आलिंगित।

मैं कौन हूँ? एक पापी, निर्धन ब्राह्मण और कृष्ण कौन हैं? भगवान्, छहों ऐश्वर्यों से पूर्ण। तो भी उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं से मेरा आलिंगन किया है।

तात्पर्य : उपर्युक्त भावार्थ श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रस्तुत चैतन्य-चरितामृत (मध्य ७.१४३) के अंग्रेजी

पाठ के आधार पर किया गया है। सुदामा इतना दीन था कि वह अपनी निर्धनता को अपने ही दोष या पाप का फल मान रहा था। ऐसी मनोवृत्ति इस कहावत के अनुसार है कि *दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी*—निर्धन होने के दोष से तमाम सद्गुण नष्ट हो जाते हैं।

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा ।

महिष्या वीजितः श्रान्तो बालव्यजनहस्तया ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

निवासितः—बैठाया गया; प्रिया—अपनी प्रियतमा द्वारा; जुष्टे—काम में लाये जाने वाले; पर्यङ्के—पलंग पर; भ्रातरः—भाइयों को; यथा—जिस तरह; महिष्या—अपनी रानी द्वारा; वीजितः—पंखा झला; श्रान्तः—थका हुआ; बाल—(चमरी के) बाल का; व्यजन—पंखा; हस्तया—हाथ से।

उन्होंने मेरे साथ अपने भाइयों जैसा वर्ताव किया और अपनी प्रियतमा के पलंग पर बैठाया।

और चूँकि मैं थका हुआ था, इसलिए उनकी रानी ने चामर से स्वयं मुझ पर पंखा झला।

शुश्रूषया परमया पादसंवाहनादिभिः ।

पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

शुश्रूषया—सेवा से; परमया—निष्ठावान; पाद—पाँव की; संवाहन—मालिश; आदिभिः—इत्यादि से; पूजितः—पूजित; देव-देवेन—समस्त देवताओं के स्वामी द्वारा; विप्र-देवेन—ब्राह्मणों के स्वामी द्वारा; देव—देवता; वत्—सदृश।

यद्यपि वे समस्त देवताओं के स्वामी हैं और समस्त ब्राह्मणों के पूज्य हैं, फिर भी उन्होंने मेरे

पाँवों की मालिश करके तथा अन्य विनीत सुश्रूषाओं द्वारा मेरी इस तरह पूजा की, मानो मैं ही देवता हूँ।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।

सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स्वर्ग—स्वर्ग; अपवर्गयोः—तथा चरम मोक्ष का; पुंसाम्—सारे मनुष्यों के लिए; रसायाम्—रसातल में; भुवि—तथा पृथ्वी पर; सम्पदाम्—सम्पदा के; सर्वासाम्—समस्त; अपि—भी; सिद्धीनाम्—सिद्धियों के; मूलम्—मूल कारण; तत्—उनके; चरण-चरणों की; अर्चनम्—पूजा।

मनुष्य स्वर्ग में, मोक्ष में, रसातल में तथा इस पृथ्वी पर जितनी भी सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता

है, उसका आधारभूत कारण उनके चरणकमलों की भक्ति है।

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् ।
इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अधनः—निर्धन व्यक्ति; अयम्—यह; धनम्—धन; प्राप्य—प्राप्त करके; माद्यन्—प्रसन्न होते हुए; उच्चैः—अत्यधिक; न—
नहीं; माम्—मुझको; स्मरेत्—स्मरण करेगा; इति—इस प्रकार सोचते हुए; कारुणिकः—दयालु; नूनम्—निस्सन्देह; धनम्—
धन; मे—मुझको; अभूरि—कुछ, रंच; न आददात्—नहीं दिया।

यह सोचकर कि यदि यह निर्धन बेचारा सहसा धनी हो जायेगा, तो वह मदमत्त करने वाले
सुख में मुझे भूल जायेगा, दयालु भगवान् ने मुझे रंचमात्र भी धन नहीं दिया।

तात्पर्य : सुदामा के इस कथन से कि भगवान् कृष्ण ने उसे रंच-भर भी धन नहीं दिया यह अर्थ
निकाला जा सकता है कि अभूरि—अल्प, रंच—धन देने की बजाय भगवान् ने उसे अपनी संगति का
बृहत् कोष दे दिया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह वैकल्पिक अर्थ सुझाया है।

इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो नियगृहान्तिकम् ।
सूर्यानलेन्दुसङ्काशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥ २१ ॥
विचित्रोपवनोद्यानैः कूजदिद्वजकुलाकुलैः ।
प्रोत्फुल्लकमुदाम्भोजकह्वारोत्पलवारिभिः ॥ २२ ॥
जुष्टं स्वलङ्कृतैः पुम्भिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः ।
किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तत्—यह; चिन्तयन्—सोचते हुए; अन्तः—अन्दर ही अन्दर; प्राप्तः—आ गया; निज—अपने; गृह—घर के;
अन्तिकम्—पड़ोस में; सूर्य—सूर्य; अनल—अग्नि; इन्दु—तथा चन्द्रमा; सङ्काशैः—होड़ में; विमानैः—दैवी महलों से;
सर्वतः—सभी दिशाओं से; वृतम्—घिरा हुआ; विचित्र—आश्चर्यपूर्ण; उपवन—आँगन; उद्यानैः—तथा बगीचों से; कूजत्—कू-
कू करते; द्विज—पक्षियों के; कुल—झुंडों समेत; आकुलैः—झुंड बनाते; प्रोत्फुल्ल—पूरी तरह खिले; कुमुद—कमलिनियों से
युक्त; अम्भोज—दिन में खिलने वाले कमलों; कह्वार—श्वेत कमलों; उत्पल—तथा जल कुमुदिनी; वारिभिः—जलाशयों से;
जुष्टम्—सुशोभित; सु—सुन्दर; अलङ्कृतैः—सजे; पुम्भिः—पुरुषों से; स्त्रीभिः—स्त्रियों से; च—तथा; हरिणा—हिरनी जैसी;
अक्षिभिः—आँखों से; किम्—क्या; इदम्—यह; कस्य—किसका; वा—अथवा; स्थानम्—स्थान; कथम्—कैसे; तत्—वह;
इदम्—यह; इति—इस तरह; अभूत्—हो गया है।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : इस प्रकार अपने आप सोचते-सोचते सुदामा अन्ततः उस
स्थान पर आ पहुँचा, जहाँ उसका घर हुआ करता था। किन्तु अब वह स्थान सभी ओर से ऊँचे
भव्य महलों से घनीभूत था, जो सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमा के सम्मिलित तेज से होड़ ले रहे थे।
वहाँ आलीशान आँगन तथा बगीचे थे, जो कूजन करते हुए पक्षियों के झुंडों से भरे थे और
जलाशयों से सुशोभित थे, जिनमें कुमुद, अम्भोज, कह्वार तथा उत्पल नामक कमल खिले हुए
थे। अगवानी के लिए उत्तम वस्त्र धारण किये पुरुष तथा हिरनियों जैसी आँखों वाली स्त्रियाँ

खड़ी थीं। सुदामा चकित था कि यह सब क्या है? यह किसकी संपत्ति है? और यह सब कैसे हुआ?

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने ब्राह्मण के विचारों के क्रम को इस प्रकार बतलाया है—सर्वप्रथम महान् अपरिचित तेज देखकर उसने सोचा यह क्या है? फिर महलों को देखकर उसने अपने मन में कहा कि यह किसका स्थान है? और उसे अपना ही पहचान कर वह आश्चर्य करने लगा कि यह किस तरह इतना बदल गया है।

एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः ।

प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मीमांसमानम्—गम्भीरता से विचार करता हुआ; तम्—उसको; नराः—पुरुष; नार्यः—तथा स्त्रियाँ; अमर—देवताओं के समान; प्रभाः—तेजमय मुखड़ों वाले; प्रत्यगृह्णन्—सत्कार किया गया; महा-भागम्—अत्यन्त भाग्यशाली; गीत—गायन; वाद्येन—तथा बाजे से; भूयसा—उच्च।

जब वह इस तरह सोच-विचार में डूबा था, तो देवताओं जैसे तेजवान सुन्दर पुरुष तथा दासियाँ उँचे स्वर में गीत गाती तथा बाजे के साथ अपने अत्यन्त भाग्यशाली स्वामी का सत्कार करने आगे आईं।

तात्पर्य : जैसाकि आचार्य विश्वनाथ चक्रवर्ती ने बतलाया है, प्रत्यगृह्णन् (बदले में कृतज्ञता ज्ञापित किया) सूचित करता है कि सर्वप्रथम सुदामा ने अपने मन में यह निश्चय करते हुए कि भगवान् चाहते हैं कि ये मेरे सेवक हों, उन्हें स्वीकार किया और उनके मनोभाव में परिवर्तन देखकर वे सेवक अपने स्वामी के पास आये।

पतिमागतमाकर्ण्य पत्युद्धर्षातिसम्भ्रमा ।

निश्चक्राम गृहात्तूर्ण रूपिणी श्रीरिवालयत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

पतिम्—अपने पति को; आगतम्—आया हुआ; आकर्ण्य—सुन कर; पत्नी—उसकी पत्नी; उद्धर्षा—हर्षित; अति—अत्यधिक; सम्भ्रमा—उत्तेजित; निश्चक्राम—बाहर आ गई; गृहात्—घर से; तूर्णम्—तेजी से; रूपिणी—स्वरूप वाली; श्रीः—लक्ष्मी के; इव—मानो; आलयात्—अपने धाम से।

जब ब्राह्मण की पत्नी ने सुना कि उसका पति आया है, तो वह हर्ष के मारे तुरन्त घर से बाहर निकल आई। वह दिव्य धाम से निकलने वाली साक्षात् लक्ष्मी जैसी लग रही थी।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी इंगित करते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्ण ने सुदामा के घर को स्वर्गधाम बना दिया था इसलिए वहाँ रह रहा प्रत्येक व्यक्ति अब सुन्दर शरीर वाला और स्वर्ग के उपयुक्त वेशभूषा से युक्त था। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह अन्तर्दृष्टि जोड़ी है—सुदामा की निर्धन तथा क्षीण पत्नी ने, जो कि एक रात पूर्व टूटी-फूटी कुटिया के नीचे चीथड़ों में सो रही थी प्रातः जगने पर पाया कि वह तथा उसका घर विचित्र रीति से बदल गये हैं। वह एक क्षण तक भौंचक्री रह गई। तब उसे अनुभूति हुई कि यह ऐश्वर्य उसके पति को जो इस समय रास्ते में कहीं होगा भगवान् द्वारा दिया हुआ उपहार है। अतएव वह उसके सत्कार की तैयारी करने लगी।

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना ।
मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिष्वजे ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पति-व्रता—पति-परायणा; पतिम्—पति को; दृष्ट्वा—देखकर; प्रेम—प्रेम की; उत्कण्ठ—उत्सुकता से; अश्रु—आँसू से भरे; लोचना—आँखों वाली; मीलित—बन्द किये; अक्षी—आँखें; अनमत्—प्रणाम किया; बुद्ध्या—विचारमग्न; मनसा—हृदय से; परिष्वजे—आलिंगन किया।

जब उस पतिव्रता स्त्री ने अपने पति को देखा, तो उसकी आँखें प्रेम तथा उत्सुकता के आँसुओं से भर आईं। अपनी आँखें बन्द किये विचारमग्न होकर उसने पतिको प्रणाम किया और मन ही मन उसका आलिंगन कर लिया।

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव ।
दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

पत्नीम्—अपनी पत्नी को; वीक्ष्य—देखकर; विस्फुरन्तीम्—तेजवान लग रही; देवीम्—देवी को; वैमानिकीम्—विमान पर आरूढ़; इव—सदृश; दासीनाम्—दासियों के; निष्क—लॉकेट; कण्ठीनाम्—जिनके गलों में; मध्ये—बीचोबीच; भान्तीम्—चमकती हुई; सः—वह; विस्मितः—चकित।

सुदामा अपनी पत्नी को देखकर चकित था। रत्नजटित लॉकेटों से अलंकृत दासियों के बीच चमक रही वह उसी तरह तेजोमय लग रही थी, जिस तरह कोई देवी अपने दैवी-विमान में दीपित हो।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि अभी तक भगवान् उस ब्राह्मण को दरिद्र अवस्था में रखे रहे, जिससे उसकी पत्नी उसे पहचान सके।

प्रीतः स्वयं तथा युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् ।
मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

प्रीतः—प्रसन्न; स्वयम्—खुद; तथा—उसके; युक्तः—साथ होकर; प्रविष्टः—भीतर जाकर; निज—अपने; मन्दिरम्—घर में; मणि—मणियों वाले; स्तम्भ—ख भों; शत—सैकड़ों; उपेतम्—से युक्त; महा-इन्द्र—स्वर्ग के राजा महान् इन्द्र का; भवनम्—महल; यथा—सदृश ।

उसने आनन्दपूर्वक अपनी पत्नी को साथ लिए अपने घर में प्रवेश किया, जहाँ सैकड़ों रत्नजटित ख भे थे, जैसे देवराज महेन्द्र के महल में हैं ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती टीका करते हैं कि सुदामा अपनी स्त्री को देखकर चकित था । जब वह आश्चर्य में था कि यह देव-पत्नी कौन है, जो मुझ जैसे पतितात्मा के पास आई है, तो दासियों ने सूचित किया कि यह उसी की पत्नी है । उसी क्षण सुदामा का शरीर तरुण तथा सुन्दर बन गया जो उत्तम वस्त्र तथा आभूषण से सुसज्जित था । प्रीतः शब्द यहाँ इसका सूचक है कि इन परिवर्तनों से उसे बेहद खुशी हुई ।

महाभारत में विष्णु सहस्रनाम में सुदामा के एकाएक ऐश्वर्य का अमर वर्णन इन शब्दों में हुआ है— श्रीदामा रंक-भक्तार्थभूम्यानीतेन्द्र वैभवः—भगवान् विष्णु को अपने दयनीय भक्त श्रीदामा (सुदामा) के लाभार्थ इस धरा पर इन्द्र के तेज को लाने वाला भी कहा जाता है ।

पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ।
पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥ २९ ॥
आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च ।
मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥ ३० ॥
स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ।
रत्नदीपान्भ्राजमानान्ललना रत्नसंयुताः ॥ ३१ ॥
विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसम्पदाम् ।
तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

पयः—दूध के; फेन—झाग के; निभाः—सदृश; शय्याः—सेज, पलंग; दान्ताः—हाथी-दाँत से बनी; रुक्म—सुनहले; परिच्छदाः—सजावट; पर्यङ्काः—पलंग, आसन; हेम—सोने के; दण्डानि—जिसके पाए; चामर-व्यजनानि—चमरी गाय की पूँछ के बने पंखे; च—तथा; आसनानि—कुर्सियाँ; च—तथा; हैमानि—सुनहरे; मृदु—मुलायम; उपस्तरणानि—गद्दों; च—तथा; मुक्ता-दाम—मोती की लड़ों से; विलम्बीनि—लटकती; वितानानि—चँदोवों; द्युमन्ति—चमचमाते हुए; च—तथा; स्वच्छ—साफ; स्फटिक—संगमरमर की; कुड्येषु—दीवालों पर; महा-मारकतेषु—बहुमूल्य मरकत-मणियों से; च—भी;

रत्न—रत्नजटित; दीपान्—दीपकों; भ्राजमानान्—चमकते; ललनाः—स्त्रियाँ; रत्न—रत्नों से; संयुताः—सजी; विलोक्य—देखकर; ब्राह्मणः—ब्राह्मण ने; तत्र—वहाँ; समृद्धीः—वृद्धि की ओर उन्मुख; सर्व—समस्त; सम्पदाम्—ऐश्वर्य का; तर्कयाम् आस—अनुमान लगाया; निर्व्यग्रः—अविचलित; स्व—अपनी; समृद्धिम्—सम्पन्नता के विषय में; अहैतुकीम्—जिसकी आशा नहीं की गई थी।

सुदामा के घर में दूध के झाग सदृश कोमल तथा सफेद पलंग थे, जिनके पाए हाथी-दाँत के बने थे और सोने से अलंकृत थे। वहाँ कुछ सोफे भी थे, जिनके पाए सोने के थे। साथ ही राजसी चामर पंखे, सुनहरे सिंहासन, मुलायम गद्दे तथा मोती की लड़ों से लटकते चमचमाते चँदोवे थे। चमकते स्फटिक की दीवालों पर बहुमूल्य मरकत-मणि (पन्ने) जड़े थे और रत्नजटित दीपक प्रकाशमान थे। उस महल की सारी स्त्रियाँ बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत थीं। जब उस ब्राह्मण ने सभी प्रकार का यह विलासमय ऐश्वर्य देखा, तो उसने शान्त भाव से इस आकस्मिक समृद्धि के विषय में अपने मन में तर्क किया।

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य

शश्वदरिद्रस्य समृद्धिहेतुः ।

महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो

नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

नूनम् बत—निश्चय ही; एतत्—इस; मम—मुझ; दुर्भगस्य—अभागे का; शश्वत्—सदैव; दरिद्रस्य—निर्धन की; समृद्धि—सम्पन्नता के; हेतुः—कारण; महा-विभूतेः—सर्वाधिक ऐश्वर्यशाली की; अवलोकतः—चितवन के अतिरिक्त; अन्यः—अन्य; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; उपपद्येत—पाया जाना चाहिए; यदु-उत्तमस्य—यदुओं में श्रेष्ठ की।

[सुदामा ने सोचा] : मैं सदैव से निर्धन रहा हूँ। निश्चय ही मुझ जैसे अभागे व्यक्ति का एकाएक धनी हो जाने का एकमात्र सम्भावित कारण यही हो सकता है कि यदुवंश के परम ऐश्वर्यशाली प्रधान भगवान् कृष्ण ने मुझ पर अपनी कृपा-दृष्टि की है।

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं

याचिष्णावे भूर्यपि भूरिभोजः ।

पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो

दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

ननु—आखिर; अब्रुवानः—न बोलते हुए; दिशते—दिया है; समक्षम्—उपस्थिति में; याचिष्णावे—याचना करने की इच्छा करने वाले को; भूरि—प्रचुर (धन); अपि—भी; भूरि—प्रचुर (धन); भोजः—भोक्ता; पर्जन्य-वत्—बादल के समान; तत्—वह; स्वयम्—स्वयं; ईक्षमाणः—देखते हुए; दाशार्हकाणाम्—राजा दाशार्ह के वंशजों में; ऋषभः—सर्वश्रेष्ठ; सखा—मित्र; मे—मेरा।

आखिर, दाशार्हों में सर्वश्रेष्ठ तथा असीम सम्पदा के भोक्ता, मेरे मित्र कृष्ण ने देखा कि मैं चुपके से उनसे माँगना चाहता था। इस तरह जब मैं उनके समक्ष खड़ा था, तो यद्यपि उन्होंने इसके विषय में कुछ कहा नहीं, तो भी उन्होंने मुझे प्रचुर सम्पदा प्रदान की है। उन्होंने दयावान वर्षा वाले बादल जैसा कार्य किया है।

तात्पर्य : श्रीकृष्ण भूरि-भोज अर्थात् असीम भोक्ता हैं। उन्होंने सुदामा को यह नहीं बतलाया कि वे किस तरह उसकी अनकही याचना को पूरा करने जा रहे हैं, क्योंकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार वे उस समय यह सोच रहे थे, “मेरे प्रिय सखा ने मुझे जो तन्दुल के दाने दिये हैं, वे मेरे पास के सारे कोषों से बढ़कर हैं। यद्यपि उसके घर में मेरे पास लाने के लायक कोई ऐसी भेंट नहीं थी फिर भी उसने अपने पड़ोसी से माँगने का कष्ट उठाया। इसलिए उचित यही होगा कि मैं अपने पास जो कुछ है उससे भी बढ़कर कोई वस्तु उसे दूँ। किन्तु मेरे पास जो कुछ है उसके समान या उससे बढ़कर कुछ भी नहीं है, अतएव मैं इतना ही कर सकता हूँ कि इसे इन्द्र, ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के कोष जैसी तुच्छ वस्तुएँ दे दूँ।” अपने भक्त की भेंट का समुचित प्रतिदान न कर पाने से उद्विग्न भगवान् कृष्ण ने उस ब्राह्मण को चुपके से अपनी कृपा प्रदान की। भगवान् ने उस वदान्य वर्षा वाले बादल की तरह कार्य किया जो अपने निकट और दूर के हर व्यक्ति की जीवन-आवश्यकताएँ प्रदान करने पर भी यह सोचता है कि किसानों द्वारा अर्पित की जाने वाली भेंटों की तुलना में उसकी यह वर्षा-रूपी भेंट तुच्छ है। लज्जावश बादल रात की प्रतीक्षा करता है और जब किसान सोये रहते हैं, तो वर्षा करता है।

भगवान् कृष्ण को जिस दाशार्ह वंश के प्रधानों में गिना गया है वे अपनी उदारता के लिए विख्यात थे।

किञ्चित्करोत्युर्वपि यत्स्वदत्तं

सुहृत्कृतं फलवपि भूरिकारी ।

मयोपणीतं पृथुकैकमुष्टिं

प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

किञ्चित्—तुच्छ; करोति—करता है; ऊरु—महान्; अपि—भी; यत्—जो; स्व—स्वयं द्वारा; दत्तम्—दिया हुआ; सुहृत्—शुभचिन्तक मित्र द्वारा; कृतम्—किया गया; फलम्—न्यून; अपि—भी; भूरि—अधिक; कारी—करने वाला; मया—मेरे द्वारा;

उपनीतम्—लाया हुआ; पृथुक—तन्दुल; एक—एक; मुष्टिम्—मुट्टी-भर; प्रत्यग्रहीत्—स्वीकार किया; प्रीति-युतः—प्रसन्नतापूर्वक; महा-आत्मा—परमात्मा ने।

भगवान् अपने बड़े से बड़े वर को तुच्छ मानते हैं, किन्तु अपने शुभचिन्तक भक्त द्वारा की गई तुच्छ सेवा को बहुत बढ़ा देते हैं। इस तरह परमात्मा ने मेरे द्वारा लाये गये एक मुट्टी तंदुल को सहर्ष स्वीकार कर लिया।

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री-

दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।

महानुभावेन गुणालयेन

विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके लिए; एव—निस्सन्देह; मे—मेरा; सौहृद—प्रेम, सौहार्द; सख्य—मित्रता; मैत्री—सहानुभूति; दास्यम्—तथा दास्य भाव; पुनः—बारम्बार; जन्मनि जन्मनि—जन्म-जन्मांतर; स्यात्—होए; महा-अनुभावेन—परम दयालु भगवान् से; गुण—दिव्य गुणों के; आलयेन—आगार; विषज्जतः—अनुरक्त; तत्—उसके; पुरुष—भक्तों की; प्रसङ्गः—बहुमूल्य संगति।

भगवान् समस्त दिव्य गुणों के परम दयामय आगार हैं। मैं जन्म-जन्मांतर प्रेम, मित्रता तथा सहानुभूति के साथ उनकी सेवा करूँ और उनके भक्तों के बहुमूल्य सान्निध्य से ऐसी दृढ़ अनुरक्ति उत्पन्न करूँ।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने बतलाया है यहाँ पर सुहृदम् उन भगवान् के प्रति स्नेह का सूचक है, जो अपने भक्तों के प्रति इतने दयालु हैं। सख्यम् वह आसक्ति है, जो उनके संग में रहने की इच्छा से प्रकट होती है, मैत्री घनिष्ठ मित्रता की प्रवृत्ति है और दास्यम् सेवा करने की उत्कण्ठा है।

भक्ताय चित्रा भगवान् हि सम्पदो

राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ।

अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं

पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्धवम् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

भक्ताय—उनके भक्त के लिए; चित्राः—विचित्र; भगवान्—भगवान्; हि—निस्सन्देह; सम्पदः—ऐश्वर्य; राज्यम्—राज्य; विभूतीः—भौतिक सम्पत्ति; न समर्थयति—प्रदान नहीं करता; अजः—अजन्मा; अदीर्घ—छोटा; बोधाय—जिसकी समझ; विचक्षणः—चतुर; स्वयम्—स्वयं; पश्यन्—देखते हुए; निपातम्—पतन; धनिनाम्—धनी का; मद—गर्व से उत्पन्न नशे का; उद्धवम्—उत्थान।

जिस भक्त में आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि (समझ) नहीं होती, उसे भगवान् कभी भी इस जगत

का विचित्र ऐश्वर्य—राजसी शक्ति तथा भौतिक सम्पत्ति—नहीं सौंपते। दरअसल अपने अथाह ज्ञान से अजन्मा भगवान् भलीभाँति जानते हैं कि किस तरह गर्व का नशा किसी धनी का पतन कर सकता है।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा व्याख्या की गयी है, विनम्र ब्राह्मण सुदामाने अपने आपको भगवान् के दुर्लभ बहुमूल्य वर, शुद्ध भक्ति, के लिए सर्वथा अयोग्य माना था। उसने तर्क दिया कि यदि वास्तव में उसमें शुद्ध भक्ति रहती तो भगवान् निश्चित रूप से उसे अविचल संपूर्ण भक्ति प्रदान करते न कि भौतिक सम्पत्ति तथा दास-दासी का सुख। भगवान् कृष्ण ऐसे विपथनों को न प्रदान करके एक गम्भीर भक्त की रक्षा करते। भगवान् एक निष्ठावान् किन्तु अल्पज्ञ भक्त को उसकी इच्छित सम्पत्ति प्रदान नहीं करते अपितु उतना ही प्रदान करते हैं जितने से उसकी भक्ति अग्रसर होती रहे। सुदामा ने सोचा, “प्रह्लाद महाराज जैसे महान् सन्त तो अपार सम्पत्ति, बल तथा यश से दूषित होने से बच सकते हैं, किन्तु मुझे अपनी इस नवीन परिस्थिति में लोभ से सदैव सावधान रहना होगा।”

हम यह समझ सकते हैं कि इस दीन-भाव से भगवान् कृष्ण की महिमा के श्रवण एवं कीर्तन की प्रामाणिक प्रक्रिया द्वारा भक्तियोग को पूरा करने में विप्र सुदामा को सफलता प्राप्त हो सकी।

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने ।

विषयान्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलम्पटः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार; व्यवसितः—संकल्प को स्थिर करते हुए; बुद्ध्या—बुद्धि से; भक्तः—अनुरक्त; अतीव—पूर्णतया; जनार्दने—समस्त जीवों के आश्रय भगवान् कृष्ण के प्रति; विषयान्—इन्द्रिय-तृप्ति की वस्तुएँ; जायया—अपनी पत्नी के साथ; त्यक्ष्यन्—त्याग करने की इच्छा से; बुभुजे—भोग किया; न—नहीं; अतिलम्पटः—धनलोलुप।

[शुकदेव गोस्वामी ने कहा] : इस तरह अपनी आध्यात्मिक बुद्धि के द्वारा अपने संकल्प को दृढ़ करते हुए सुदामा समस्त जीवों के आश्रय भगवान् कृष्ण के प्रति पूर्णतया अनुरक्त बना रहा। उसने धनलिप्ता से रहित होकर अपनी पत्नी के साथ साथ उस इन्द्रिय-सुख का भोग, अन्ततः समस्त इन्द्रिय-तृप्ति का परित्याग करने के विचार (अनासक्त भाव) से किया जो उसे प्रदान किया गया था।

तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः ।

ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; वै—भी; देव—देवस्य—ईश्वरों के ईश्वर; हरेः—कृष्ण का; यज्ञ—वैदिक यज्ञ के; पतेः—नियामक का; प्रभोः—परम स्वामी; ब्राह्मणाः—ब्राह्मणजन; प्रभवः—स्वामी; दैवम्—अर्चाविग्रह; न—नहीं; तेभ्यः—उनकी अपेक्षा; विद्यते—विद्यमान है; परम्—महान।

भगवान् हरि समस्त ईश्वरों के ईश्वर, समस्त यज्ञों के स्वामी तथा सृष्टि के परम शासक हैं। लेकिन वे सन्त ब्राह्मणों को अपना स्वामी मानते हैं, अतः उनसे बढ़कर कोई अन्य देव नहीं रह जाता।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती यह इंगित करते हैं कि यद्यपि श्रीकृष्ण इस सृष्टि के परम शासक हैं, तो भी वे ब्राह्मणों को अपने स्वामी के रूप में मानते हैं। यद्यपि वे समस्त ईश्वरों के ईश्वर हैं, तो भी वे ब्राह्मणों को अपना आराध्यदेव मानते हैं। वे समस्त यज्ञों के स्वामी होते हुए भी ब्राह्मणों की पूजा करने के लिए यज्ञ करते हैं।

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा

दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम् ।

तद्भयानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धन-

स्तद्भ्राम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सः—वह; विप्रः—ब्राह्मण; भगवत्—भगवान् का; सुहृत्—मित्र; तदा—तब; दृष्ट्वा—देखकर; स्व—निजी; भृत्यैः—दासों द्वारा; अजितम्—अजेय; पराजितम्—पराजित, हारा हुआ; तत्—उस पर; ध्यान—उसके ध्यान का; वेग—जोर या प्रवाह से; उद्ग्रथित—जुड़ा; आत्म—आत्मा को; बन्धनः—बन्धन; तत्—उसका; धाम—निवासस्थान; लेभे—प्राप्त किया; अचिरतः—अल्प समय में; सताम्—साधुओं की; गतिम्—गन्तव्य, लक्ष्य।

इस तरह यह देखते हुए कि अजेय भगवान् किस प्रकार से अपने दासों द्वारा जीत लिये जाते हैं, भगवान् के प्रिय ब्राह्मण मित्र को अनुभव हुआ कि उसके हृदय में भौतिक आसक्ति की जो ग्रंथियाँ शेष रह गई थीं, वे भगवान् के निरन्तर ध्यान के बल पर कट गई हैं। उसने अल्प काल में भगवान् कृष्ण का परम धाम प्राप्त किया, जो महान् सन्तों का गन्तव्य है।

तात्पर्य : सुदामा के पार्थिव वैभव का वर्णन कर चुकने के बाद अब शुकदेव गोस्वामी यह बतलाते हैं कि अगले लोक में उस ब्राह्मण ने किस ऐश्वर्य का भोग किया। श्रील जीव गोस्वामी उल्लेख करते हैं कि सुदामा में इस लेशमात्र भ्रम या माया का सूक्ष्म गर्व बचा हुआ था कि वह विरक्तया अर्थात् अनासक्त ब्राह्मण है। जब उसने भगवान् द्वारा अपने भक्तों के समक्ष आत्मसमर्पण का ध्यान किया, तो

यह लेशमात्र भाव भी जाता रहा ।

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्धिमुच्यते ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; ब्रह्मण्य-देवस्य—ब्राह्मणों के पक्षपाती भगवान् का; श्रुत्वा—सुन कर; ब्रह्मण्यताम्—ब्राह्मणों के प्रति दयाभाव को; नरः—मनुष्य; लब्ध—प्राप्त करते हुए; भावः—प्रेम; भगवति—भगवान् के प्रति; कर्म—भौतिक कार्य के; बन्धात्—बन्धन से; विमुच्यते—छूट जाता है ।

भगवान् सदैव ही ब्राह्मणों के प्रति विशेष कृपा दर्शाते हैं । जो भी ब्राह्मणों के प्रति भगवान् की दया के इस विवरण को सुनेगा, उसमें भगवत्प्रेम उत्पन्न होगा और इस तरह वह भौतिक कर्म के बन्धन से छूट जायेगा ।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण नामक पुस्तक के उस अध्याय की भूमिका में जिसमें इस लीला का वर्णन हुआ है कृष्ण कृपामूर्ति श्रील प्रभुपाद ने टीका की है, “समस्त जीवों के परमात्मा भगवान् कृष्ण हर एक के हृदय को भलीभाँति जानते हैं । ब्राह्मण भक्तों के प्रति उनका विशेष रूप से झुकाव रहता है । भगवान् कृष्ण ब्रह्मण्यदेव भी कहलाते हैं, जिसका अर्थ है कि वे ब्राह्मणों द्वारा पूजित हैं । अतएव यह मानी हुई बात है कि जो भक्त भगवान् के प्रति पूर्णतया समर्पित है उसे पहले से ही ब्राह्मण-पद प्राप्त हो चुका होता है । ब्राह्मण बने बिना कोई व्यक्ति परम ब्रह्म भगवान् कृष्ण तक नहीं पहुँच सकता । कृष्ण अपने भक्तों के दुख को मिटाने के लिए विशेष रूप से चिन्तित रहते हैं और वे अपने भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं ।”

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध अन्तर्गत “भगवान् द्वारा सुदामा ब्राह्मण को वरदान” नामक इक्यासीवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए ।